प्रथम अध्याय

प्रथम अध्याय

'सांप्रदायिकता' – परिभाषा, स्वरूप एवं स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर सांप्रदायिक परिवेश.

प्रस्तावना :–

'सांप्रदायिकता' हमारे इतिहास एवं वर्तमान जीवन की त्रासदी हैं। 'सांप्रदायिकता' ने भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन को क्षति ग्रस्त बनाकर मानवी सभ्यता को धक्का पहुँचाया हैं। स्वतंत्रता के पूर्व काल से चली आई इस सामाजिक समस्या ने आजादी के बाद उग्र और विकराल रूप धारण करके भारत के विकास मार्ग पर अवरोध उत्पन्न किया है। 'सांप्रदायिकता' की समस्या पर स्वतंत्र रूप से विचार एवं लेखन करते समय इस समस्या की पार्श्वभूमि को जानना नितांत आवश्यक एवं अनिवार्य है। अतः लघुशोध–प्रबंध के प्रथम अध्याय के अंतर्गत 'सांप्रदायिकता' की संकल्पना एवं स्वतंत्रता पूर्व और स्वातंत्र्योत्तर सांप्रदायिक परिवेश को स्पष्ट करना हमें आवश्यक एवं संगत लगता है।

1.1 'सांप्रदायिकता' से तात्पर्य / परिभाषा :–

'सांप्रदायिकता' यह शब्द 'संप्रदाय' इस शब्द से बना है। अतः 'सांप्रदायिकता' के व्युप्तत्तिमूलक अर्थ को जानने के लिए 'संप्रदाय' का अर्थ जानना आवश्यक है। 'संप्रदाय' का कोशगत अर्थ है "कोई विशेष धार्मिक मत"[1] या "किसी मत के अनुयायियों की मंडली।"[2] 'संप्रदाय' के इस अर्थ से स्पष्ट होता है कि 'सांप्रदायिकता' का संबंध धर्म से है; धर्म के विशेष मत से है।

'सांप्रदायिकता' का कोशगत अर्थ है– "केवल अपने संप्रदाय की श्रेष्ठता तथा हितों का विशेष ध्यान रखने वाला।"[3] या "किसी विशेष संप्रदाय से संबंध रखनेवाला।"[4] 'सांप्रदायिकता' के कोशगत अर्थ या परिभाषा से इस संकल्पना के बाह्य

रूप पर प्रकाश डाला जा सकता है। केवल अपने धर्म, संप्रदाय को श्रेष्ठ मानकर दूसरे धर्मों के प्रति द्वेष-भावना रखना मनुष्य के संकुचित वृत्ति के लक्षण है। अज्ञानवश किसी संप्रदाय का व्यक्ति आक्रमक वृत्ति धारण कर लेता है तब उसमें 'सांप्रदायिकता' के भाव जागृत होते हैं और वह विध्वंस का कारण बनता है।

इसलिए डॉ. लाजवंती भटनागर 'सांप्रदायिकता' को परिभाषित करते हुए लिखती है – "धर्म के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए कोई ना कोई पथ अपनाना पडता है तो वह है संप्रदाय। संप्रदाय बनते हैं; बदलते हैं और मिट भी जाते हैं। धर्म भूमि है। उसके बदलने और नष्ट होने का अर्थ है प्रलय। वह नित्य है, सत्य है।"[5]

पुरूषोत्तम अग्रवाल के मतानुसार – "'सांप्रदायिकता' का अर्थ है – हिंसा और छद्म पर आधारित अन्यायपरक विचारधारा।"[6]

ले. कृष्ण कुमार खन्ना 'सांप्रदायिकता' के अंतरंग को स्पष्ट करते हुये लिखते हैं – "एक विशेष ऐतिहासिक क्षण में (इतिहास के क्षण वर्षों और दशकों में गिने जाते हैं) सामाजिक संरचना के विशिष्ट दबाव और प्रभाव के फलस्वरूप धर्म और धार्मिकता के विभिन्न तत्त्व (जो निजी होते हैं और सार्वजनिक भी, जिनका सिध्दांत-पक्ष होता है और व्यवहार-पक्ष भी) उस संरचना में क्रियाशील अन्य तत्त्वों (आर्थिक और वर्गीय, राजनीतिक और सांस्कृतिक) से जुडकर वह विशेष स्वरूप, आकार और अन्तर्वस्तु ग्रहण करते हैं; जिनकी समष्टि को हम 'सांप्रदायिकता' कहते हैं।"[7]

*** निष्कर्ष :–**

संक्षिप्त में उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता कि अपने धर्म का वर्चस्व प्रस्थापित करने हेतु दूसरों के धर्म, संप्रदाय, धार्मिक मत और धर्म अनुयायिओं पर अविचार, अविवेक, अन्यायपूर्ण आक्रमण की प्रवृत्ति 'सांप्रदायिकता' कहलाती है। भारत में सदियों से सांप्रदायिकता की स्थिति चली आई है, जिससे भारत में धार्मिक एकता में दरारें उत्पन्न होती जा रही है। आजादी के बाद भारत के अनेक नगरों, महानगरों की हिंदू-मुसलमान लोगों के बीच सांप्रदायिक फसाद उभरते आ रहे हैं। भारत-पाकिस्तान के बीच के संबंधों में इसी 'सांप्रदायिकता' ने बिखराव की स्थितियाँ निर्माण की है। एक धर्म का दूसरे धर्म पर आक्रमण मानवता के लिए लज्जास्पद होकर भी आज यह सब

चल रहा है। भारत बहुधार्मिक, बहुभाषिक, बहुजातीय देश होने के कारण यहाँ हमेशा धार्मिक सांप्रदायिक, भाषिक, जातीय फसाद होते आ रहे हैं। सांप्रदायिक फसादों ने आज इतना विद्रुप रूप धारण कर दिया है कि इसकी ज्वालाएँ ग्राम-जीवन तक पहुँचकर पूरे देश, देश का चप्पा-चप्पा सांप्रदायिकता से झुलस रहा है।

1.2 'सांप्रदायिकता' का स्वरूप' :-

'सांप्रदायिकता' को परिभाषित करते समय उसके बाह्य रूप से तो हम परिचित हुए हैं। अतः इसके आंतरिक रूप को जानने के लिए 'सांप्रदायिकता' की संकल्पना या स्वरूप को स्पष्ट करना आवश्यक है। इसके पूर्व हमने जान लिया है कि 'सांप्रदायिकता' का सीधे 'धर्म' तथा उसके विभिन्न संप्रदायों से संबंध है। इसलिए इस संकल्पना को स्पष्ट करने के लिए भारत तथा भारत के धार्मिक परिवेश को जानना नितांत आवश्यक है।

संविधान के अनुसार भारत धर्म निरपेक्ष देश है। फिर भी प्राचीन काल से यहाँ विविध धर्मों तथा धर्म तत्त्वज्ञान की एक विशेष भूमिका चलती आयी है। बहुधार्मिक होने के साथ-साथ भारत बहुभाषिक, बहुवांशिक तथा विविध धर्म संप्रदायों से बना विश्व का एक विशाल देश है। यहाँ हिंदू, मुस्लिम, सीख, ईसाई, बौध्द, जैन आदि धर्मों तथा जाति-उपजातियों और उनके संप्रदायों को माननेवाले अनेक लोग रहते हैं। उनके मन पर सदियों से चले आ रहे अपने धर्म तथा धर्म तत्त्वज्ञान का विशेष प्रभाव है। विभिन्न धर्म तथा धर्म के अनेक संप्रदाय मनुष्य के दिमाग की उपज है। समाज के सुचारू संचालन के लिए हमारे देश के महापुरूषों ने धर्म तथा धर्म के विभिन्न संप्रदायों की रचना की है। उदार शिक्षा, उच्च लोकादर्श तथा अध्यात्मिक ज्ञान उन्नति से देश का तथा स्वयं का कल्याण इस मंगलकारी उद्‌देश्य की प्राप्ति के लिए महापुरूषों ने धर्म तथा संप्रदायों का निर्माण किया है। भारत में हिंदू धर्म का विशेष महत्त्व है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार पुरूषार्थों की प्राप्ति मनुष्य जीवन के सफलता के लिए महत्त्वपूर्ण मानी गयी है। इस कारण भारत में 'धर्म' संकल्पना विशेष महत्त्व रखती है। संस्कृत शास्त्रकारों ने 'धारयति इति धर्मः' कहा है, जिसका अर्थ है, जो धारण किया जाता है वह धर्म है। अतः धर्म का सुचारू संचालन धारण करनेवाले व्यक्ति पर निर्भर है कि वह धर्म का पालन किस तरह करता है। लेकिन पिछली शताब्दियों से चिंतन की ओर ले जानेवाला धर्म चिंता का विषय बन रहा है। विभिन्न धर्मों के कुछ तत्त्वों की

आपस में टकराहट कौमी झगडों को निर्माण करके 'सांप्रदायिकता' के उत्पीड़न को बढावा दे रही है।

डॉ.यदुनाथ थत्ते के मतानुसार –"सांप्रदायिकता के मूल में स्पृश्या-स्पृश्य भाव तथा धर्मों के बारे में ऊँच-नीच भाव ही रहा है।"[8] इसी कारण भारत के इतिहास में हिंदू धर्म में शैव-वैष्णव, बौध्द धर्म में हीनयान और महायान, जैन धर्म में श्वेतांबर और दिगंबर, सिक्खों में निरंकारी और अकाली, ईसाईयों के कॅथॉलिक और प्रोटेस्टंट और मुस्लिम धर्म में शिया और सुन्नी आदियों में संघर्ष हुआ है। लेकिन इन सबमें हिंदू-मुस्लिम धर्म के संघर्ष के परिणाम व्यापक और वर्तमान स्थिति में त्रासदी के रूप में 'सांप्रदायिकता' को ऊर्जा प्रदान कर रहे हैं।

इस संदर्भ में डॉ. निलम सराफ कहती है –"भारतीय समाज में सांप्रदायिकता धर्म की मुख्य विकृति है। धार्मिक कट्टरता एवं सांप्रदायिकता के परिणाम स्वरूप देश में भयानक दंगें हुए हैं, जिनमें अनगिनत निर्दोष लोगों को अपने प्राणों से हाथ धोना पडा। सांप्रदायिकता का विषाक्त चित्र देखने को मिला, अयोध्या में हुए मंदिर-मस्जिद प्रपंच में।"[9]

मुस्लिम धर्मवाद और हिंदुत्ववाद के आपसी टकराहट के कारण भारत में 'सांप्रदायिकता' ने अपनी जडें मजबूत बनाई है। ऊपरी सतह पर निगाह डालने से ज्ञात होता है कि 'सांप्रदायिकता' के उत्पीड़न का स्त्रोत धर्म है लेकिन यह सच नहीं है। देश के राजनेताओं ने लोगों को अक्सर धर्म तथा धार्मिक भावनाओं के नाम पर भडकाया है। इसलिए यह भ्रम पैदा होता है कि 'सांप्रदायिकता' धार्मिक भावनाओं की तीव्र अभिव्यक्ति है। लेकिन सच बात तो यह है कि 'सांप्रदायिकता' और 'धार्मिकता' अपने मूल उद्देश्यों में एक दूसरे के ठिक विपरीत है। इस विषय में डॉ.लोहिया ने एक स्थान पर 'धर्म' और 'राजनीति' के बीच के संबंधों का विवरण करते हुए कहा है –"राजनीति तत्कालिक धर्म है और धर्म दीर्घकालीन राजनीति है। (पॉलिटिक्स इज शॉर्ट टर्म रिलीजन ॲन्ड रिलीजन इज लाँग टर्म पॉलिटिक्स) धर्म जब निकट उद्देश्यों की फिक्र करने लगता है तो वह राजनीति बन जाता है और तब उनके बीच टकराव होना अनिवार्य बन जाता है। आज धर्म के नाम पर जो दंगें-फसाद और विध्वंस है, वह धर्म को राजनीति का रूप देने के कारण होता है।"[10] स्पष्ट है कि 'धर्म' और 'सांप्रदायिकता' दो अलग संकल्पनाएँ हैं। 'सांप्रदायिकता' घिनौनी राजनीति का एक हिंसक रूप है जो धार्मिक कट्टरता है और धर्मांधता का नतीजा है।

'सांप्रदायिकता' का दूसरा उग्र रूप स्पृश्यास्पृश्य भाव में है। भारत में वर्णाश्रम व्यवस्था के कारण स्पृश्य और अस्पृश्य के बीच हमेशा पारस्परिक तनाव का वातावरण रहा है। इस वर्णाश्रम व्यवस्था ने समाज में असंतुलन की स्थितियाँ निर्माण की। पिछडी जाति-जनजातियों को विकास की मुख्य-धारा में लाने के लिए 'आरक्षण-नीति' को अपनाया गया जिसके कारण स्पृश्य-अस्पृश्यों के बीच तनाव पैदा हुए। डॉ. आंबेडकर ने भारतीय समाज का बडे मार्मिक ढंग से वर्णन करते हुए लिखा है – "भारतीय समाज अनेक मंजिला, अनेक दालानवाला एक सुहावना भवन है, लेकिन एक मंजिल से दूसरे मंजिल पर जाने के लिए उसमें सिढियाँ नहीं है, और एक दालान से दूसरे दालन जाने के लिए दरवाजें नहीं है।"[11] इस स्थिति में अगर आरक्षण-नीति के माध्यम से सिढियाँ या दरवाजें बनाए जाते हैं तो 'सांप्रदायिकता' के भाव जागृत होते हैं।

भारत में बहुसंख्यक लोगों के जीवन में विकास प्रक्रिया का अवरूद्ध होना, बेरोजगारी और गरीबी में दिन-ब-दिन बढौत्री होना, आर्थिक असमतोल का रहना आदि के कारण बहुसंख्यक लोग हताश होकर दूसरें धर्मों और जातियों के लोगों के विरूद्ध आक्रमक होते हैं। इसके परिणाम स्वरूप अल्पसंख्यकों को उनसे भय और असुरक्षितता की भावना सताती है। प्रतिक्रिया के रूप में वह अपने धर्म तथा धर्म प्रतीकों को चिपक कर रहने में सुरक्षा का अनुभव करते हैं। इस तरह अल्पसंख्यकों का संप्रदायवाद बहुसंख्यकों के संप्रदायवाद को बढावा देता है। इस संबंध में ले. कृष्ण कुमार खन्ना लिखते हैं – "'सांप्रदायिकता' मानसिक विकार की स्थिति की सूचक है, उसके मुख्य स्त्रोत जैविक संवेगों और यथार्थ के बीच होनेवाला टकराव नहीं बल्कि मनुष्य की सांस्कृतिक विरासत और उसके नये सामाजिक अनुभवों के बीच समय-समय पर होनेवाला असंतुलन है, जिसके फलस्वरूप मनुष्यों के कुछ मनोभाव विस्थापित होकर कभी-कभी एकदम विपरीत स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं।"[12] इससे 'सांप्रदायिकता' का स्वरूप हमारे सामने स्पष्ट होता है।

* निष्कर्ष :–

उपर्युक्त विवेचन से 'सांप्रदायिकता' के स्वरूप पर प्रकाश पडता है कि 'सांप्रदायिकता' भारतीय समाज में धर्म की मुख्य विकृति है क्योंकि वह धर्म का नकाब ओढ़कर 'सांप्रदायिकता' की घिनौनी राजनीति का प्रचलन करती है। असंतुलित विकास के कारण अन्य जाति या धर्म का तिरस्कार मनुष्य के मानसिक विकार का सूचक है, जिससे 'सांप्रदायिकता' निर्माण होती है। भारत में इस त्रासदी के मूल में धार्मिक कट्टरता, धर्मांधता और स्पृश्यास्पृश्य भाव है। आज 'सांप्रदायिकता' हमारी राष्ट्रीय चेतना और विकास के लिए सबसे बडी चुनौती है क्योंकि यह धर्म का नकाब धारण करके आती है, धर्म से इसके भेद को जानना जरूरी है, ताकि इसके प्रभाव को मिटाया जा सके।

आज भारत देश की 'सांप्रदायिकता' विकराल रूप धारण कर रही है, 'सांप्रदायिकता' ने देश की एकता को विखंडित करके रखा है, देश में अशांति की जड सांप्रदायिक फसाद है। 'सांप्रदायिकता' के नाम पर मंदिर-मस्जिद आदि का विवाद खडा हो रहा है, जिससे देश की बडी हानि हो रही है। 'सांप्रदायिकता' एक विध्वंसकारी जहर होने के कारण वह देश के विकास की जड को कुरेद-कुरेद कर खा रही है। 'सांप्रदायिकता' ने देश की एकता पर बडा प्रहार किया है, आतंकवादी प्रवृत्ति को उभारा है, जिससे वर्तमान जीवन संत्रस्त है।

1.3 स्वतंत्रता पूर्व भारत का सांप्रदायिक परिवेश :–

'सांप्रदायिकता' केवल वर्तमान स्थिति की त्रासदी नहीं है। इसके जहरीले बीज भारतीय इतिहास में बहुत पहले से विद्यमान है। अतः 'सांप्रदायिकता' के परिवेश को जानने के लिए स्वतंत्रता पूर्व भारत के परिवेश को जानना आवश्यक है।

1.3.1 मुस्लिम शासक और भारत :–

भारत में इस्लाम का आगमन सातवीं शताब्दी में हुआ। इ.स. 712 मुहम्मद बीन कासिम ने भारत पर आक्रमण किया। मुस्लिम शासकों के आक्रमण का सिलसिला भारत में आकर बस जाने तक जारी रहा जिससे यहाँ मुगलों, आदिलशाही, कुतुबशाही तथा निजामशाही का वर्चस्व प्रस्थापित हुआ। सम्राट अकबर से लेकर औरंगजेब तक अनेक बादशाहों ने इस भूमि पर राज्य किया। कुछ बादशाह धर्म सहिष्णु थे। इस विषय में प्रा. सुभाष वारे लिखते हैं – "मथुरा-वृंदावन क्षेत्र के लगभग 35 मंदिरों के लिए मुगल शासकों अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ से सहायता मिलती रही।"[13] तो

औरंगजेब जैसे धर्माभिमानी बादशहा ने हिन्दुओं पर जिजिया कर लगवाया जिससे हिंदू-मुस्लिमों के बीच तनाव पैदा हुए। कुछ मुस्लिम शासकों ने हिंदुओं के मंदिरों को ध्वस्त किया। कुछ लोगों ने शासकों के उपद्रव से धर्मांतरण किया तो कुछ लोग वर्णाश्रम व्यवस्था के जातीय बंधनों से तंग आकर धर्मांतरण कर रहे थे। जिससे धर्मों के बीच की दूरियाँ बढ रही थी। इसकाल में मुगल शासकों के दरबार में अनेक हिंदू सरदार अपनी सेवा दे रहे थे तो हिंदू शासकों के दरबारों के प्रमुख अधिकार पदों पर मुस्लिम सरदार अपना कार्य निष्ठा से कर रहे थे। इसकाल को हिंदू-मुस्लिम धर्म के परस्पर मिलन का काल मानना उचित होगा। लेकिन कुछ धूर्त लोगों ने अपने स्वार्थपूर्ति के लिए इतिहास को विकृत बनाने का प्रयत्न किया। उन्होंने मध्यकाल के सब युद्धों को धार्मिकता का चोला पहनाकर लोगों के मन में 'सांप्रदायिकता' का जहर उभरा है। इस संबंध में मधु वाणी के मतानुसार –"हिंदुस्थान का इतिहास हिंदू-मुस्लिम, हिंदू-हिंदू और मुस्लिम-मुस्लिम इनके बीच के युद्धों का इतिहास है, इनका धर्म से कोई संबंध नहीं था। राज्य विस्तार और संपत्ति की लूटमार ही युद्धों का कारण था।"[14]

अतः मुस्लिम शासक और भारत के परिवेश के विवेचन से स्पष्ट होता है कि यह काल इस्लाम के प्रवेश और उनके भारत में स्थिर होने का काल है। कुछ शासकों ने धर्म सहिष्णुता से धर्मों-धर्मों के बीच सौहार्द निर्माण किया तो कुछ शासकों ने पर धर्म द्वेष से 'सांप्रदायिकता' का बीजारोपन किया। जिसको भविष्य में खाद और पानी देकर सिंचने का कार्य ब्रिटिशों ने कुशलता पूर्वक किया। 'मराठा साम्राज्य' की निर्मिति इसी 'सांप्रदायिकता' की उपज हो सकती है।

1.3.2 सन् 1857 आजादी की पहली जंग और ब्रिटिश नीति :–

व्यापार करने के उद्देश्य से भारत में ब्रिटिशों ने प्रवेश किया जिसका मुस्लिम शासकों के साथ हिंदू राजाओं ने भी स्वागत किया। इन ब्रिटिशों ने ही सांप्रदायिक वैमनस्य को बढावा दिया। ब्रिटिशों ने भारत में परस्पर एकता का अभाव, विभिन्न धर्मों के बीच के अंतर, धर्मांधता का अनुभव किया था। भारत पर एकाधिकार निर्माण करने के लिए सांप्रदायिक उन्माद की ब्रिटिश नीति की शुरूवात सन् 1857 की बगावत की पहली जंग से हुई। उत्तर प्रदेश के बराकपुर के सैनिक छावनियों के सिपाहियों के काडतुसों में सुअर और गाय की चरबी लगाकर ब्रिटिशों ने हिंदू-मुस्लिमों के बीच वैमनस्य निर्माण करने का प्रयत्न किया। ब्रिटिशों ने भारतीय सामाजिक और

सांस्कृतिक जीवन में जबरदस्ती अतिक्रमण किया। रियासतों के विलिनीकरण के कारण कुछ राज्यशासक उनसे रूष्ट हुए। इस कारण रूष्ट रियासतों और असंतुष्ट भारतीय जनमानस ने ब्रिटिशों के खिलाफ सन् 1857 में आजादी की पहली जंग छेडी। गौरतलब करने की बात यह है कि हिंदू-मुस्लिमों के बीच वैमनस्य की दिवार खडी करके राज्यशासन करने की ब्रिटिशों की नीति विफल हो गयी क्योंकि मुगल सम्राट बहादूर शाह जफर के नेतृत्व में अनेक हिंदू रियासतें ब्रिटिशों के खिलाफ उठ खडी हो गई।

स्पष्ट है, भारत में एकाधिकार प्रस्थापित करने के उद्देश्य से ब्रिटिशों ने ही हिंदू-मुस्लिमों के बीच सांप्रदायिक उन्माद को निर्माण करने का पहली बार प्रयत्न करके सांप्रदायिकता को बढाने का कार्य किया। लेकिन सन् 1857 की आजादी की साझी बगावत इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण हैं कि ब्रिटिशों की इस सांप्रदायिक रणनीति का मुँहतोड जवाब दिया गया। लेकिन कालांतर में ब्रिटिशों की इसी सांप्रदायिक रणनीति से भारत का विखंडन हुआ और सांप्रदायिक उत्पीड़न को बढावा मिला।

1.3.3 भारत विखंडन और 'सांप्रदायिकता' :-

स्वतंत्रता पूर्व काल में ब्रिटिशों के सांप्रदायिक रणनीति का विध्वंसकारी रूप भारत-पाक विखंडन में देखा जा सकता है। भारतीय राजनेताओं के परस्पर विरोधी भूमिका, मतभेद और ब्रिटिशों की 'विखंडित करो और राज्य करो' की नीति की सफलता भारतीय इतिहास में 'सांप्रदायिकता' की दृष्टि से प्रक्षोभक काल है।

सन् 1857 की जंग के बाद ब्रिटिशों ने भारतीय राजसत्ता पर वर्चस्व प्रस्थापित करने के लिए अपने राजनीतिक दृष्टिकोण में परिवर्तन किया। भारतीय राजसत्ता को ईस्ट इंडिया कंपनी से इंग्लैण्ड की रानी के हाथ में हस्तांतरित करके अँग्रेजों ने मुगल साम्राज्य ध्वस्त कर दिया। जिसके कारण मुस्लिम अभिजनों के मन में अलगाव की भावना पैदा हुई। हिंदुओं के बीच शिक्षा का प्रसार, सरकारी दफ्तरों में उनका प्रतिनिधित्व मुस्लिम नेताओं के मन में असुरक्षा के भाव पैदा करता रहा। इस असुरक्षित भावना ने मुस्लिम अभिजनों ने अँग्रेजी प्रशासन से एकनिष्ठ रहने की आवश्यकता को महसूस किया। जिससे हिंदू और मुस्लिम के बीच अलगाववादी भावना, ईर्ष्या-द्वेष की भावना ने जन्म लिया।

सन् 1885 में 'इंडियन नेशनल काँग्रेस' की स्थापना की गई, जिसमें हिंदू अभिजनों के साथ मुस्लिम अभिजन भी सदस्य रहे। भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस की संपूर्ण

भारत का प्रतिनिधित्व करने की भूमिका के बावजूद सर सय्यद अहमद जैसे मुस्लिम अभिजनों ने इसका प्रतिवाद किया। काँग्रेस की विधायक भूमिका के बावजूद मुस्लिम अभिजन अँग्रेजों से एकनिष्ठ रहना चाहते थे। "मुस्लिम समाज की इस विचलता, विचार मंथन का फायदा ब्रिटिशों ने उठाया और हिंदू-मुस्लिम के बीच अलगाववादी भावना को पनपाने के प्रयत्न शुरू हुए। इसका परिणाम मुस्लिमों के लिए विभक्त चुनाव क्षेत्र देने में और मुस्लिम लीग की स्थापना में हो गया।"[15] इससे हिंदू-मुस्लिम अलगाववादी भावना में बढौत्री हुई और राजनीति में भी सांप्रदायिकता को बढाने के प्रयत्न शुरू हुए।

इस कालखंड में राष्ट्रीय आंदोलन ब्रिटिशोंके खिलाफ तेज हो रहा था। इस स्थिति में ब्रिटिशोंने 'विखंडित करो और राज्य करो' की नीति का पहला प्रयत्न सन् 1905 में लॉर्ड कर्झन के 'बंगाल विभाजन' करने की घोषणा से किया गया। लेकिन 'वंग-भंग आंदोलन' के जहाल प्रतिक्रिया से सन् 1911 में उसपर रोक लगाई गई। जिसके कारण 'मुस्लिम लीग' के मुस्लिम अभिजन जो बंगाल विभाजन के पक्षधर थे उनपर आघात हुआ।

आगे चलकर अँग्रेजों ने मुस्लिम अभिजनों के क्रोध को अपना हथियार बनाकर सन् 1911 में सर रॉम्जे मक्डोनाल्ड ने 'कम्यूनल अवार्ड' – 'सांप्रदायिक निर्णय' की घोषणा की। यह निर्णय इतना भयानक था कि इससे भारत क्षेत्र के साथ हर एक जाति में बँट जाता। इस योजना के तहत ही डॉ. आम्बेडकर जी ने दलितों के लिए अलग चुनाव क्षेत्र की माँग की लेकिन महात्मा गांधी ने प्राणप्रण से इस सांप्रदायिक निर्णय का विरोध करके 'पूणे करार' के तहत अस्पृश्यों के लिए आरक्षित स्थान देकर स्पृश्य–अस्पृश्य के सांप्रदायिक वैमनस्य को रोक लिया। वरना भारत-पाक विभाजन से पूर्व ही भारत स्पृश्य-अस्पृश्य के जाति-उपजाति में विखंडित होता। अँग्रेजों के इस सांप्रदायिक निर्णय के पीछे छिपे स्वार्थ को स्पष्ट करते हुए प्रा. चंद्रकांत पाटगांवकर लिखते हैं –"अँग्रेजों की मन ही मन इच्छा थी कि उनके चले जाने पर भारत का विभाजन अनेक देशों में हो। हिंदुओं का 'हिंदुस्थान', द्रविडों का 'द्रविडिस्तान', जैनों का 'जैनिस्तान', लिंगायतों का 'लिंगायतीस्तान' यानी सारे हिंदुस्तान का कब्रिस्तान।"[16] लेकिन राष्ट्रीय काँग्रेस की विधायक भूमिका से यह अनर्थ टल गया।

बॅ. मुहमंद अली जीना पहले राष्ट्रीय काँग्रेस के सदस्य थे लेकिन राष्ट्रीय काँग्रेस के परंपरावादी नेताओं का मुस्लिमों के विभक्त योजनाओं को विरोध देखकर

जीना ने 'मुस्लिम लीग' की बागदोर संभालकर 'मुस्लिम राष्ट्रवाद' को बल प्रदान किया। मुस्लिमों के अलगाववादी भूमिका के प्रतिक्रिया के रूप में 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' और 'हिंदू महासभा'की स्थापना करके हिंदू-मुस्लिम भेद तथा 'सांप्रदायिकता' को बढावा दिया गया। मुस्लिम लीग और संघीय विचार प्रणालिओं ने देश की अधिकांश हिंदू और मुस्लिम समाज के बीच 'सांप्रदायिक' विचारों के जहरीले बीज बोने का अप्रत्यक्ष कार्य कुशलता से किया।

सन् 1940 लाहौर अधिवेशन में 'मुस्लिम लीग' ने मुस्लिम बहुल प्रांतों का एक पृथक स्वायत्त शासन प्राप्त संघ की माँग करके स्वतंत्र पाकिस्तान की अप्रत्यक्ष माँग की, जिसका राष्ट्रीय काँग्रेस ने भी विरोध किया। मुस्लिम लीग और राष्ट्रीय काँग्रेस के नेतोओं के परस्पर मतभेद का लाभ उठाकर ब्रिटिशों ने 'विखंडित करो और राज्य करो' की नीति का प्रयत्नपूर्वक प्रचार किया, जिससे जीना ने सन् 8 अगस्त,1942 के आंदोलन में मुस्लिमों को दूर रहने की अपील की। सन् 1942-1947 तक का काल भारतीय राजनीति का अत्यंत जटील और प्रक्षोभक काल है। इसी काल में 'द्वि-राष्ट्रवाद' की संकल्पना ने प्रौढत्व प्राप्त करके सांप्रदायिकता को उग्र बना दिया। जिसके कारण हिंदू-मुस्लिमों के बीच वैमनस्य की दिवार परिपक्व बनती चली गई।

'सिमला परिषद' से ज्ञात हुआ कि अधिकतर मुस्लिम अभिजन स्वतंत्र पाकिस्तान के पक्षधर थे तो सामान्य लोग इस विभाजन के विरोधक थे। 'पाकिस्तान' पढ़े-लिखे मुस्लिमों के दिमाग की उपज थी। इससे राष्ट्रीय काँग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच वैचारिक तनाव बढता गया। इस धर्मवादी राजनीतिक मतभेद में अँग्रेजी साम्राज्य के प्रधानमंत्री एटली ने 3 जून, 1947 को भारत विभाजन की घोषणा करके 'सांप्रदायिकता' के नरमेध यज्ञ में घी डालने का कार्य किया।

मुस्लिम लीग के असहयोग से तंग आकर काँग्रेस की कार्यकारिणी ने 6 मार्च,सन् 1947 को प्रस्ताव पारित करके विभाजन को अप्रत्यक्ष स्वीकृति दे दी। लॉर्ड माउंट बेटन द्वारा पाकिस्तान की सत्ता 14 अगस्त,1947 को जिन्ना को और भारत की सत्ता राजेंद्र प्रसाद को सौंपने की घोषणा कर दी गई। विभाजन के साथ की पूरे भारत में कत्लेआम शुरू हुआ। रेल गाडियों में भरे लोगों को शवों में बदला जा रहा था। यह काल भारतीय सांप्रदायिक परिवेश के चरम विकास काल माने तो यह अतिशयोक्ति न होगी। जाते-जाते ब्रिटिश ऐसे जख्म दे गए जो आज नासूर बनकर रिस रहे हैं। इस विषय में डॉ. पितांबर सरोदे लिखते हैं –"विभाजित भारत 15 अगस्त,सन् 1947 में

स्वतंत्र हुआ परंतु देश की सीमा पर खून की होली खेली गई। लगभग पाँच लाख लोग मारे गए। पूरे स्वतंत्रता संग्राम की अनेक भली-बुरी यादें शायद देश भूल जाए, परंतु विभाजन के समय जो अत्याचार और रक्तपात हुए उन्हें यह देश कभी भूल नहीं सकेगा। वह ऐसा जख्म है, जो आज तक रिस रहा है। इस विभाजन ने भविष्य की भारतीय राजनीति और समाजनीति पर बडे गहरे परिणाम छोडे।"[17] अतः स्पष्ट है कि भारतीय राजनीति और राजनेताओं के परस्पर विरोधी भूमिका और ब्रिटिशों की 'विखंडित करो और राज्य करो' कि नीति से भारत का विखंडन हुआ जिससे 'सांप्रदायिकता' में बढौत्री हुई।

* निष्कर्ष :-

स्वतंत्रता पूर्व काल के भारत के सांप्रदायिक परिवेश के विवेचन के ज्ञात होता है की यह काल 'सांप्रदायिकता' के दृष्टि से सांप्रदायिक भावना के बीजारोपन, उसके संवर्धन और विकास का काल है। मुस्लिम शासकों के जमाने में हिंदू-मुस्लिम कौमों के बीच एक दूसरे के प्रति अनुराग था लेकिन कुछ धर्मांध शासक दोनों धर्मों के बीच तनाव निर्माण करते रहे। भारत में ब्रिटिशों का आगमन सांप्रदायिकता के बीजारोपन का काल मानना उचित होगा। भारत पर एकाधिकार प्रस्थापित करने के लिए सन् 1857 की जंग के बाद अँग्रेज हिंदू-मुस्लिमों के बीच वैमनस्य की दिवारें बनाते गए। सन् 1907 में बंगाल विभाजन से शुरू हुई ब्रिटिशनिति 15 अगस्त, 1947 में भारत-पाक विभाजन से सफल हुई। भारतीय राजनीति में परस्पर विरोधी भूमिका ने 'मुस्लिम लीग' का निर्मिति हुई, जिससे हिंदू-मुस्लिम अलगाववादी भावना बढती गई। 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' और 'हिंदू महासभा' द्वारा हिंदू राष्ट्र की माँग प्रबल बनी। कट्टरपंथियों की 'द्वि राष्ट्रवादी' संकल्पना ने 'सांप्रदायिकता' को बढावा दिया। 'विभाजन' राजनीति में सक्रिय धूर्त अभिजनों के दिमाग की उपज है लेकिन इस विभाजन के बाद भडकी सांप्रदायिकता की आग में दो वक्त की रोटी, भाईचारा और अमन-शांति की चाह रखनेवाले बहुसंख्य मासुम लोग झुलस गए। इस विभाजन ने हिंदू-मुस्लिम भाईयों को सरहदों मे बाँट दिया। जिसका भविष्य में भारतीय राजनीति और समाजनीति पर गहरा परिणाम हुआ।

1.4 स्वातंत्र्योत्तर भारत का 'सांप्रदायिक' परिवेश :–

स्वातंत्र्योत्तर 'सांप्रदायिक' परिवेश को प्रस्तुत करते समय सन् 1948 से लेकर सन् 1990 तक की उन महत्त्वपूर्ण घटनाओं को लेने का प्रयत्न हैं जिसमें 'सांप्रदायिकता' का विषाक्त चित्र देखने को मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर 'सांप्रदायिक' परिवेश पर एक ओर हिंदू-मूस्लिमों के परंपरागत वैमनस्य के काले बादल छाये थे तो दूसरी ओर वंशगत, जातिगत भेदभाव ने इस परिवेश के क्षितिज को दूषित कर दिया। इस काल में परस्पर विरोधी धार्मिक श्रद्धाओं ने सांप्रदायिक माहौल उग्र बनाया। यह काल उच्चतम श्रद्धा के राजनीतिकरण का काल है, साथ ही श्रद्धा विरोधियों ने भी श्रद्धा विरोध को राजनीतिक रूप देकर साशंक वातावरण निर्माण किया, जिससे भारतीय समाज-जीवन बहुत बुरी तरह प्रभावित रहा।

1.4.1 गांधी हत्या और ब्राह्मणों के विरोध में भडकी 'सांप्रदायिकता':-

15 अगस्त, सन् 1947 को भारत बरसों की गुलामी से आजाद हुआ। लेकिन आजादी की खुशी पर 'सांप्रदायिकता' के उग्र रूप ने मातम का सेहरा बाँध दिया। संकुचित धर्म भावना ने इन्सान को राक्षस बनाया। देश के सीमावर्ती भागों में खून की होली खेली जा रही थी। लोग बरसोंके भाईचारें को भूलकर एक-दूसरे के खून के प्यासे हो गए थे। इस संबंध में डॉ. हेमेंद्रकुमार पानेरी लिखते हैं –"सांप्रदायिक संघर्षों का मूल कारण धर्म है। संकुचित धार्मिक भावना को लेकर विश्व में बड़े बड़े संघर्ष हुए हैं। सांप्रदायिक संघर्षों में मानव रक्त की होली खेली गई है। भारत विभाजन की घटना इसका उदाहरण है।"[18]

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् देश के सीमावर्ती क्षेत्रों में भडके सांप्रदायिक दंगों के समय गांधीजी ने अनशन शुरू किया। गांधीजी के अनशनों के नैतिक परिणाम के कारण देश के प्रभावित इलाकों में सांप्रदायिक दंगें–फसाद शांत हो गए। जिससे 'हिंदू महासभा' और 'राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ' जैसी हिंदुत्ववादी संगठनों की प्रतिशोध लेने की राजनीति को लगाम बैठ गया। इनके 'संपूर्ण हिंदू राष्ट्र 'बनाने के सपने का मोहभंग हुआ और कट्टरपंथीय, हिंदुत्ववादी धर्मांध लोग गांधीजी को अपनी मार्ग का शत्रु समझने लगे। भारत की विशाल जनता का बुद्धिभेद करके गांधी विरोध में हिंदुत्ववादी पराजित हुए और उन्होंने 'हिंदू राष्ट्र' बनाने के महत्त्वकांक्षा से गांधीजी को ही समाप्त करने का षडःयंत्र रचा। दिल्ली में आयोजित प्रार्थना सभा में निःशस्त्र गांधीजी पर हिंदू राष्ट्रवाद से प्रेरित नथुराम गोडसे ने गोलियाँ चलाकर गांधी की हत्या

की। यह घटना भारतीय इतिहास की बहुत बडी त्रासदी है। 'सांप्रदायिकता' के उन्माद ने एक ऐसे युगपुरूष को छीन लिया जिसको सारा विश्व वंद्य मानता था।

'गांधी हत्या' सांप्रदायिक विद्वेष का ऐसा घिनौना रूप है जो समाज में व्याप्त धर्मांध, धर्मकट्टरतावादी, कट्टरपंथियों के विकृत मनोदशा का द्योतक है। गांधी जैसे युगपुरूष की हत्या से भारतीय जनमानस उद्वेलित हो उठा। गांधी समर्थकों ने समस्त भारत में ब्राह्मणों के खिलाफ उग्र प्रदर्शन करके अपना रोष प्रकट किया।

1.4.2 कश्मीर का सीमा प्रश्न और सांप्रदायिकता :–

भारत–पाक विभाजन के पश्चात् कुछ रियासतों ने भारत में विलीन होने से इन्कार कर दिया। हैदराबाद, जुनागड़ और कश्मीर इन तीन रियासतों में विवाद उत्पन्न हुआ जिसके कारण सांप्रदायिक झगडों ने उग्र रूप धारण किया। भारत सरकार ने जनमतानुसार हैदराबाद और जुनागड की रियासतों का भारत में विलनीकरण कर दिया लेकिन कश्मीर का प्रश्न पेचिदा बना। कश्मीर रियासत के राजा हरिसिंह हिंदू थे और बहुसंख्य जनता मुस्लिम। बहुसंख्यक मुस्लिम जनसंख्या के आधार पर पाकिस्तान ने कश्मीर पर अपना अधिकार प्रस्थापित करना चाहा। लेकिन राजा हरिसिंह ने स्वतंत्र रहना पसंद किया। राजनीतिक दबाव और पठाणी उग्रवादियों के हिंसक वृत्ति के कारण राजा हरिसिंह ने कश्मीर को जमातवादी उग्रवादियों से बचाने के लिए भारत से लष्करी कार्यवाही की माँग की। कश्मीर की जनता ने भी पाकिस्तान के इस जमातवादी उपद्रव से तंग आकर भारत को सहयोग देना पसंद किया। इस विषय संबंध में प्रदिप देशपांडे लिखते हैं– "स्थानिक कश्मीरी जनता को पठाणी टोलियों की घुसखोरी पसंद नहीं थी। सब धर्मों के आगे निकला स्थानिक कश्मीरी समाज स्वभाव से कश्मीर इतना ही प्राकृतिक रूप से शांत वृत्ति का था। कश्मीरी लोगों के स्वतंत्र जीवन मूल्य थे। उनके दैनिक–सामाजिक जीवन में धार्मिक मूल्यों को स्थान था। लेकिन धर्मवादी राजनीति उन्हें पूर्णतः अमान्य थी। राजनीति में धर्म का स्थान उन्हें अमान्य था। यही कश्मीर की जनता का विशेषत्व था।"[19] और अखिकार राजा हरिसिंह ने शेख अब्दुल्ला से विचार विनिमय करके कश्मीर रियासत को भारत में विलीन करने पर हस्ताक्षर किए।

कश्मीर रियासत के भारत में विलीन हो जाने से भारत–पाक देशों दरम्यान तनाव निर्माण हुआ। कश्मीर सीमा–विवाद वर्तमान स्थिति तक सांप्रदायिक विध्वंस को ऊर्जा देता आया है, जिससे भारत और पाकिस्तान के बीच हमेशा के लिए दुश्मनी की दीवार और अधिक बढती जा रही है। इससे कश्मीर आये दिन 'सांप्रदायिकता' की आग

में झुलसता रहता है। कश्मीर सीमा प्रश्न ने पूरे भारत देश को प्रभावित करके हिंदू-मुस्लिमों को एक-दूसरे का दुश्मन बनाया है। सीमा क्षेत्र में आतंकवादी हमलें, नरसंहार, अग्नीकांड, बम विस्फोट, बेबस लाचार नागरिकों का अपहरण आदि से कश्मीरी जनता संत्रस्त है।

पाकिस्तान के धर्मांधतावादी दोगली राजनीति के कारण कश्मीर का प्रश्न उग्र हो गया। इसके परिणाम स्वरूप भारत और पाकिस्तान के बीच सन् 1948, 1965, 1971 ओर 1999 में चार बार युद्ध हुए, जिसमें भारत ने पाकिस्तान को मुँहतोड जवाब दिया। इन युद्धों से देश का सांप्रदायिक माहौल उग्र और तनावपूर्ण बना। हिंदुत्ववादी संगठनों ने कश्मीर विवाद को लेकर देश में मुस्लिम विरोधी प्रदर्शन करके भारतीय मुस्लिमों के वफादारी पर प्रश्न चिह्न लगाए। कुछ जमातवादी धर्मांध मुस्लिमों ने पूरे कौम को बदनाम करने का कार्य आतंकवादी गतिविधियों के द्वारा किया। अतः कश्मीर सीमा विवाद वर्तमान जीवन की त्रासदी बना है जिसके कारण देश का सांप्रदायिक माहौल उग्र बनता जा रहा है।

1.4.3 वांशिक भेद और 'सांप्रदायिकता' :-

स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत में वांशिक, जातिगत भेदभावओं ने भी देश के अनेक जगहों पर सांप्रदायिक भावना को तीव्र बनाकर विध्वंसकारी स्थिति को निर्माण किया। साथ ही श्रद्धा विरोधियों ने भी सांप्रदायिक माहौल उग्र बनाया। वांशिक भेद देश के असमतोल प्रादेशिक विकास का परिणाम था। तामिल-सिंहली, आसामी-विदेशी-मुस्लिम आदियों के वांशिक भेद के कारण देश में समय-समय पर सांप्रदायिकता की अग्नी भडक उठी। स्वातंत्र्योत्तर काल में धर्म और धर्म विरोधी श्रद्धा से वांशिक भेद उत्पन्न हुये। "सन् 1965 में सालेम शहर में द्रविड कझगम ने निकाले ईश्वर विरोधी जूलुस में देवी-देवता, ऋषी-मुनि और विश्व के सब धर्म संस्थापकों के अत्यंत बिभत्स और विकृत चित्रों को बड़े-बड़े वाहनों पर रखा गया था।"[20] जिससे सांप्रदायिक माहौल गर्म हो उठा था।

सन् 1980 में तमिलनाड में स्थित मीनाक्षीपुरम् में 300 दलितों ने धर्मांतर करके मुस्लिम धर्म का स्वीकार किया जिससे हिंदू धर्माभिमानियों को धक्का पहुँचा। हिंदुत्ववादी संगठन आर.एस.एस. और विश्व हिंदू परिषद ने इसके विरोध में राष्ट्रीय स्तर पर उग्र प्रदर्शन किए।

सन् 1983 में पंजाब के अंतर्गत कलह के परिणाम स्वरूप सीख धर्म के उग्रवादियों ने स्वतंत्र 'खलिस्तान'की माँग की। लेकिन तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी ने इस माँग से इन्कार करके उनके खिलाफ सैनिकी कार्रवाई के आदेश दिया। इस संदर्भ में डॉ. क्षितिज धुमाळ लिखते हैं –"पाक ने सीख उग्रवादियों को प्रोत्साहन देना शुरू किया। सीख आतंकवादियों ने सुवर्ण मंदिर पर खलिस्तान का ध्वज फहराया। इस स्थिति को काबू में लाने के लिए 5 जनवरी, 1984 को सुवर्ण मंदिर पर सैनिकी कार्रवाई (ऑपरेशन ब्लू स्टार) करने का निर्णय किया गया। इस कार्यवाही में हजारों सीख, भिंद्रानवाले और उनके सहयोगी उग्रवादियों को मार के खलिस्तानवादी आंदोलन को रोक दिया गया।"[21]लेकिन इस कार्यवाही में अकाल तख्त की इमारत टूट गई जिसके कारण सिखों की धार्मिक भावना को ठेस पहुँची। प्रतिशोध की भावना के कारण लोक क्रोधित हो उठे– "जिससे सीख लोग रूष्ट हुए, परिणामतः इंदिराजी के अंगरक्षक बेअंतसिंग और संतवंत सिंग ने अक्तूबर, 1984 को श्रीमती इंदिरा गांधी की हत्या की। इस हत्या के विरोध में सीख विरोधी भयावह उपद्रव हुए, जिसमें हाजारों निर्दोष सीख मारे गये। करोडों की संपत्ति नष्ट हुई।"[22] 'खलिस्तान' की माँग पर सांप्रदायिकता का जो उग्र रूप सामने आया वह भारत विभाजन पर भडकी सांप्रदायिक त्रासदी की यादों को ताजा करता है। भारत विभाजन के बाद बने 'पाकिस्तान' ने विश्ववंद्य महात्मा गांधी का बलिदान लिया तो 'खलिस्तान' की माँग ने देश की प्रथम महिला प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी के प्राणों बलिदान लिया।

सन् 1980 के दरम्यान देश के पूर्वोत्तर राज्य देश की मुख्य विकासधारा से दूर असम के लोगों ने अपनी भौतिक विपन्नावस्था का कारण अन्य वांशिक समुदायों को माना, जिससे वे देश के अन्य समुदायों का तिरस्कार करने लगे। इस विकृत मानसिकता के कारण असम और विदेशी नागरिकों खासकर मुस्लिमों के बीच संघर्ष ने जोर पकड लिया। इस संबंध में अपनी प्रतिक्रिया स्पष्ट करते हुए डॉ. क्षितिज धुमाळ लिखते हैं – "सन् 1980 के दरम्यान घुसे हुए विदेशी नागरिकों को भगाने के लिए 'ऑल असम स्टुडंटस् युनियन' (आसू) का निर्माण हुआ। चुनाव सूची से विदेशी मतदाताओं के नाम को हटाना, सीमावर्ती भूभाग में होनेवाली घूसखोरी को रोकना, असम में घूसे विदेशी मुस्लिमों के खिलाफ संघर्ष छेडना आदि कार्य 'आसू' संगठन ने अपने हाथ में लिये। इस संघर्ष में 18 फरवरी, 1983 में 'नेल्ली' नामक असम के देहात में बोडो लोगों ने मुसलमानों की बडी संख्या में हत्याएँ की। सन् 1987 में असम के

बोडों ने स्वतंत्र 'बोडो राज्य' की माँग की।"[23] अतः बोडो-मुस्लिम संघर्ष ने सांप्रदायिक परिवेश को उग्र बनाने में सहायक भूमिका निभायी।

दक्षिण भारत में सन् 1983 में सिंहली-तमिल वंशियों के बीच वांशिक भेद ने उग्र रूप धारण कर लिया। इस सांप्रदायिक वैमनस्य के कारगर उपाय हेतु तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने सिंहली–तमिलों के बीच मध्यस्तता की भूमिका निभायी लेकिन धर्मांध तमिलों ने बम विस्फोट के तहत उनकी हत्या की। अतः स्वातंत्र्योत्तर काल में तमिल-सिंहली, असम-विदेशी मुस्लिम संघर्ष, खलिस्तान के कारण हिंदू-सीख संघर्ष आदि वांशिक-धार्मिक भेदाभेद और धर्म विरोधी भावना ने सांप्रदायिक त्रासदी को बढावा देकर देश का वातावरण कलुषित बनाया।

1.4.4 मंदिर–मस्जिद विवाद और 'सांप्रदायिकता' :–

'सांप्रदायिकता' को बढाने का कार्य स्वातंत्र्योत्तर काल में बखूबी होता आ रहा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में अनेक सांप्रदायिक कारनामों को अंजाम मिला। मंदिर-मस्जिद जैसे धार्मिक प्रतीकों के द्वारा हिंदू-मुस्लिमों के बीच सांप्रदायिक बवाल उठा। मंदिर-मस्जिद विवाद को नयी राजनीतिक प्रतिष्ठा मिली। इस विवाद की पार्श्वभूमि देखे तो ज्ञात होता है कि बाबरी मस्जिद और राम मंदिर निर्माण प्रश्न के कारण हिंदू-मुस्लिमों के बीच तनाव निर्माण हो गया था। तब से लेकर वर्तमान स्थिति तक राजनीतिक पार्टियों को बाबरी मस्जिद और राम मंदिर विवाद का एक ऐसा हथियार मिला जिससे समाज में मजहब के नाम पर बौकलाहट निर्माण करके सामाजिक वातावरण अशांत बनाने का षड्यंत्र लगादार शुरू रहा है। इस विवाद ने हिंदू–मुस्लिमों के बीच नफरत का जहर फैलाया।

स्वातंत्र्योत्तर काल में मंदिर-मस्जिद के विवाद के कारण देश के अनेक संवेदनशील इलाकों में कौमी दंगें-फसाद हुए। धार्मिक कट्टरतावादी मनोवृत्ति ने धर्मांधता को जन्म दिया जिससे सांप्रदायिक सद्भाव को तिलांजलि मिल गई। 'जिहाद' के नाम पर भोले-भाले कश्मीरी युवकों को देश विघातक कार्यों में लगाया गया। देश में कट्टरपंथियों ने जगहों-जगहों पर दंगें-फसादों से सांप्रदायिक माहौल उग्र बनाया। इसकाल की समाज-विघातक स्थिति को स्पष्ट करते हुए डॉ. यादवराव धुमाळ लिखते हैं– "सन् 1970 के बाद स्वतंत्र भारत में हिंदू-मुस्लिमों के बीच बार-बार फसाद होते रहे। भिवंडी, अहमदाबाद, अलिगढ़, जमशेदपुर आदि जगहों पर सांप्रदायिक फसाद हुए।

धर्मांतर, नरसंहार, अग्निकांड, लूटपाट, बलात्कार आदि जघन्य कृत्य सांप्रदायिक फसादों में घटित होने लगे। सांप्रदायिकता के इस जहरीले बीज को अँग्रेजों ने भारत भूमि में बोया। उसे खाद-सिंचाई से बडा बनाने का काम आजादी के बाद राजनेताओं ने किया।"[24] स्वातंत्र्योत्तर कालखंड में मंदिर-मस्जिद विवाद पर उठे सांप्रदायिक दंगोंने भारत विखंडन की दु:खद स्मृतियों को उजागर किया।

परस्पर विरोधी धर्म भावनाओं के प्रकटीकरण के कारण देश के हिंदू–मुस्लिमों में वैमनस्य बढता गया। देश के मुस्लिमों को संदेह की दृष्टि से देखा जाने लगा। धर्म के नाम पर बनी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ, विश्व हिंदू परिषद, बजरंग दल, इस्लामिक सेवक संघ, जमात-ए-इस्लामी, हिजबुल मुजाहिद्दीन आदि धार्मिक संगठनों ने सांप्रदायिकता को बढावा दिया। बाबरी मस्जिद और राम जन्मभूमि के प्रश्न ने राष्ट्रीय स्तर पर गंभीर स्थिति निर्माण की। एक ओर 'जिहाद' का नारा तो दूसरी ओर 'हिंदू राष्ट्र' की महत्त्वकांक्षा ने हिंदू–मुस्लिमों को स्वतंत्र भारत में फिर एक बार बाँट दिया।

सन् 1986 में न्यायालय ने 'राम-जन्मभूमि' का ताला खोलने का आदेश दिया। हिंदुत्ववादियों ने राष्ट्रीय स्तर पर 'राम-मंदिर' बनाने के संकल्प का प्रचार करके मुस्लिमों के खिलाफ द्वेष भावना का बढाया। सन् 1989 के अक्तूबर महिने में शिलान्यास करके 'राम-मंदिर' बनाने का संकल्प किया गया। 'हर हर महादेव' 'श्री रामचंद्र की जय' की गगनभेदी घोषणाओं ने हिंदुत्ववादियों के इरादों को स्पष्ट कर दिया। इसके एक साल बाद सन् 30 अक्तूबर, 1990 में 'रथ यात्रा' (कारसेवा) निकालने का फैसला करके सांप्रदायिक महौल तनावपूर्ण बनाया गया। अयोध्या में 'कारसेवा' के दौरान भडके दंगों में अनगिणत निरपराध लोगों को प्राण गँवाने पडे। "अक्तूबर 1990 में अयोध्या में हिंदुओं की निहत्थी भीड़ पर गोलियाँ चलाई गई, जिसमें बडी संख्या में लोग हताहत हुए। हाजारों लागों को पकडकर जेलों में बंद किया गया। अयोध्या मसले के कारण भारत में भारतीय समाज का, राजनीति का हिंदूकरण तेजगति से होता गया।"[25] इस विवाद ने हिंदू-मुस्लिमों के बीच वैमनस्य की दरारों को बढाकर सांप्रदायिक त्रासदी को बलवति बनाने का कार्य किया।

* निष्कर्ष :–

स्वातंत्र्योत्तर भारतीय सांप्रदायिक परिवेश में 'पाकिस्तान' की कल्पना ने हिंदू-मुस्लिम के बीच नफरत की दीवार को बढाने का कार्य किया। भारत-पाक विभाजन से भडकी 'सांप्रदायिकता' ने राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जैसे विश्ववंद्य पुरूष की हत्या की गई जो स्वातंत्र्योत्तर भारत की सबसे बडी त्रासदी मानी जा सकती है। इसके साथ वांशिक भेदों के कारण भडके सांप्रदायिक दंगें-फसादों में इंदिरा और राजीव गांधी जैसे प्रतिभासंपन्न प्रधानमंत्रियों की हत्या भारतीय राजनीति की बहुत बडी त्रासदी है। कश्मीर सीमा प्रश्न, मंदिर-मस्जिद विवाद ने स्वातंत्र्योत्तर सांप्रदायिक परिवेश को निरंतर गर्म बनाए रखा। सन् 1990 तक आते–आते बाबरी मस्जिद-राम जन्मभूमि विवाद ने विभाजन की बाद की दूरियों को ओर अधिक बढाया। अंतिम दशक के सांप्रदायिक परिवेश को पार्श्वभूमि प्रदान करने का कार्य इसी मंदिर-मस्जिद विवाद ने किया।

1.5 20 वीं सदी के अंतिम दशक का सांप्रदायिक परिवेश :–

स्वतंत्रता पूर्व काल से लेकर स्वातंत्र्योत्तर काल में भारत ने जिन समस्याओं का सामना किया उसमें 'सांप्रदायिकता' एक ऐसी सामाजिक समस्या रही, जिसने भारतीय जनमानस को बडी भीषणता से प्रभावित किया। 20 वीं सदी के अंतिम दशक के 'सांप्रदायिक' परिवेश के बीज इतिहास में देखे जा सकते हैं। स्वातंत्र्योत्तर काल में जन्मे 'कश्मीर-सीमा विवाद' ओर 'बाबरी मस्जिद-रामजन्मभूमि विवाद' ने विवेच्य काल के 'सांप्रदायिक' उन्माद को चरम सीमा तक पहुँचाया। अंतिम दशक में 'बाबरी कांड' की 'सांप्रदायिक'त्रासदी ने हिंदू-मुस्लिमों के बीच नफरत की दिवार को बढाकर भारत-पाक विभाजन की दुःखद स्मृतियों को उजागर किया। एक ओर मुस्लिम जमातवादियों ने 'जिहाद' के नाम पर जम्मू-कश्मीर तथा भारतीय जनता को आतंकित किया तो दूसरी ओर हिंदुत्ववादियों ने बाबरी मस्जिद ढहाकर 'सांप्रदायिक सद्भाव' को तिलांजलि दी। अतः 20 वीं सदी के अंतिम दशक के सांप्रदायिक परिवेश में सन् 1991 से लेकर सन् 2000 तक की उन सांप्रदायिक घटनाओं को लिया गया है,जिनसे भारतीय सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन बुरी तरह प्रभावित रहा।

1.5.1 'बाबरी कांड' और 'सांप्रदायिकता' का रौद्र रूप' :–

अक्तूबर, 1990 में 'कार-सेवा' में सम्मिलित हिंदुओं पर गोलियाँ चलाने से समस्त भारत में सांप्रदायिक और कौमी दंगें–फसादों ने हिंसा का तांडव रचा दिया। हिंदुत्ववादी संगठनों ने इस घटना को भारतीय इतिहास का ऐतिहासिक पर्व बनाकर हिंदुओं को मुस्लिमों के खिलाफ भडकाया। मंदिर-मस्जिद विवाद के उग्र रूप को देखकर सन् 1991 में लोक सभा ने सर्व सम्मति से 'पूजा स्थल विधेयक' पास किया। इस कारण मुस्लिमों की धार्मिक भावनाओं को धक्का पहुँचा। इस विधेयक के कारण हिंदुत्ववादियों में जोश भरने का कार्य धूर्त राजनेताओं ने किया। इस धार्मिक विसंवाद के परिणाम स्वरूप 6 दिसम्बर, 1992 में कट्टरपंथी, धर्मांध, हिंदुत्ववाद से प्रेरित कार्यकर्ताओं ने बाबरी मस्जिद का ढाँचा ध्वस्त करके वहाँ भगवा ध्वज फहराया। अयोध्या में स्थित बाबरी मस्जिद का ढाँचा ध्वस्त होने कारण अनेक स्थलों पर धार्मिक एवं सांप्रदायिक दंगें-फसादों ने उग्र रूप धारण किया लेकिन इस तनावभरी स्थिति में सरकारी नीति की उदासीनता देखनी मिली। भारत की तत्कालीन सरकार इस घटना को रोकने तथा तद्नंतर की स्थिति पर नियंत्रण पाने में असफल रही। इस संबंध में डॉ. सराय लिखते हैं –"कट्टरपंथी भाजपा ने प्रधानमंत्री नरसिंहराव की मौन सहमति से एक ऐसे कारनामे को अंजाम दिलाया जिससे एक बार फिर देश का सामाजिक ताना–बाना छिन्न-भिन्न हो गया। आर.एस्.एस्.-भाजपा गठजोड ने अपने हरवल दस्ते विश्व हिंदू परिषद तथा बजरंग दल के साथ मिलकर बाबरी मस्जिद को बडी बेरहमी से ढहा दिया। गौरतलब है कि यह सब अर्ध्दसैनिक बलों और सेना की मौजूदगी के बावजूद हुआ। मस्जिद के अवश्यंभावी विध्वंस की खबर से खुफिया-एजेंसियों ने सरकार को पहले ही अगाह कर दिया था, किंतु सरकार हाथ पर हाथ धरे हुए विध्वंस होते देखती रही।"[26] इस घटना के बाद देश में अनेक संवेदनशील इलाकों में सांप्रदायिक दंगों ने अशांति का माहौल बनाया। इस अमानवी घटना से भारत ही नहीं बल्कि पडोसी मुल्क बाँग्लादेश और पाकिस्तान में भी हिंसाचार हुआ। भारतीय लोकतंत्र पर सवालिया निशाण लगानेवाली इस विघटनवादी प्रवृत्ति में इन्सान में पशुत्व के दर्शन हुए। हिंसा की आग में अनेक बेबस लोग झुलस गए। जान-माल की काफी हानि हुई। बाबरी मस्जिद के कारण हिंदू-मुस्लिमों के बीच वैमनस्य बढता गया। भारत जैसे धर्म निरपेक्ष, लोकतांत्रिक देश में यह सांप्रदायिक घटना एक करारा तमाचा है। अतः 'बाबरी कांड' एक ऐसी उग्र सांप्रदायिक घटना है जिसमें इन्सानियता का खात्मा हो गया।

1.5.2 मुंबई बम विस्फोट और 'सांप्रदायिकता' :–

बाबरी विध्वंस की लांछनास्पद घटना के बाद भडके सांप्रदायिक दंगों के शांत होने के बाद कुछ कट्टरपंथी मुस्लिम धर्माभिमानी दहशतगर्दों ने इस घटना को प्रत्युत्तर देने के इरादे से भारत की आर्थिक राजधानी मुंबई को बम विस्फोटों की कडी शृंखला ने हिला दिया। जान-माल की अपार क्षति हुई। बम विस्फोटों के बाद देश में हिंदू-मुस्लिमों के बीच संदेह से तनावपूर्ण वातावरण बना। इस घटना से मुंबई के साथ–साथ अहमदाबाद में हिंदू-मुस्लिमों के बीच पुनः कौमी दंगों ने हिंसा का रौद्र रूप धारण कर लिया। बम्बई बम विस्फोंटों से देश की सुरक्षा को खतरा निर्माण हुआ। सामान्य जनजीवन इससे बुरी तरह प्रभावित रहा। लोगों के दिलों–दिमाग में सांप्रदायिकता का खौफ बैठ गया। अतः स्पष्ट है कि मुंबई बम विस्फोट 'बाबरी विध्वंस' का प्रत्युत्तर रहा जिससे सांप्रदायिक सद्भाव एवं सामंजस्य के सामने खतरा निर्माण हुआ जिससे हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रयत्नों में दरार पडी। देश की आर्थिक और व्यावसायिक महासत्ता मुंबई को अपार क्षति पहुँची जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था और विकास पर भी गहरा असर हुआ।

1.5.3 कश्मीर में बढता तनाव और 'सांप्रदायिकता' :–

स्वतंत्रता वेदी पर हिंदू-मुस्लिमों की हिंसा के कारण सांप्रदायिक वैमनस्य बढता गया और वर्तमान स्थिति में भी कश्मीर सीमा–विवाद से यह भाव निरंतर रहा है। स्वातंत्र्योत्तर काल में निर्मित कश्मीर सीमा-विवाद का प्रश्न 20 वीं सदी के अंतिम दशक में पुनः गंभीर बना। इस विवाद ने भारत-पाकिस्तान के बीच तनावभरा माहौल बना रहा। 'जिहाद' के नाम पर अनेक कश्मीरी युवकों ने पाकिस्तान की छत्र-छाया में लष्करी प्रशिक्षण हासिल करके कश्मीर में आतंकवादी स्थिति को बनाये रखा। लेकिन भारत के शक्ति का सामना वे नहीं कर सके। सन् 1996-97 के बाद 'जिहादी' दहशतगर्दों ने कश्मीर के साथ पूरे देश में सांप्रदायिक विध्वंसकारी घटनाओं को अंजाम दिया। इस संबंध में डॉ. अशोक चौसाळकर जी लिखते हैं –"इस काल में भारत सरकार ने लगभग पाँच लाख सुरक्षा जवानों को कश्मीर में तैनात कर दिया। पुराने दहशतवादी 'आजादी' वाले थे। उनमें से ज्यादा तर श्रीनगर के मीरपुरी (पाकिस्तान व्याप्त कश्मीर) के मुसलमान थे। लेकिन 1996-97 के बाद यहाँ जिहादी दहशतगर्दों का प्रभाव बढ गया। सुरक्षा बल और दहशतगर्दों की गोलीबारी में अनेक निरपराध लोग

मारे गये। इनमें से नये दहशतगर्दों का निर्माण हुआ क्योंकि जिनके परिवार के लोग मारे गये, उन्होंने प्रतिशोध लेने के लिए आतंकवादी गतिविधियों को अंजाम दिया जिससे हिंसाचार में बढौत्री हो गई।»[27] इससे पूरे देश का सामाजिक माहौल दूषित बनता गया। भारत-पाकिस्तान के बीच वैमनस्य में बढौत्री हुई। पाक से प्रतिशोध लेने की भावना से देश की मुस्लिम जनता के खिलाफ संदेह एवं साशंक माहौल बनता गया। इस बढते तनाव के बीच सन् 1998 में भारत और पाकिस्तान ने अण्वस्त्रों का विस्फोट करके सामरिक ताकतों का प्रदर्शन किया जिससे कश्मीर-सीमा विवाद को अंतर्राष्ट्रीय महत्त्व प्राप्त हुआ। उधर पाकिस्तान ने कारगिल से घूसखोरी करके भारत के महत्त्वपूर्ण इलाकें पर कब्जा किया जिसके कारण सन् 1999 में भारत और पाकिस्तान के बीच 'कारगील युद्ध' छीड गया और देश का वातावरण पुनः गंभीर बना।

'कारगील वॉर' के समय देश में लोकसभा चुनावों का वातावरण गर्म हो रहा था। राजनेताओं ने इस युद्ध को प्रचार का माध्यम बनाकर अल्पसंख्यकों के खिलाफ देश की आवाम को मजहबों के नामपर भडकाना शुरू किया। हिंदू कट्टरपंथी राजनीतिक पार्टियों ने इस युद्ध को सांप्रदायिक राजनीति का रूप देकर चुनावों की रणनीति तैयार करके मुस्लिमों के खिलाफ देश का वातावरण गर्म किया। इस संदर्भ में डॉ. सराय लिखते हैं –"अपने धुआँधार प्रचार के बल पर भाजपा ने इस संघर्ष को सांप्रदायिक रंग देने की कोशिश की। देशभक्ति और युद्धोन्माद की लहर फैलाकर भाजपा ने अपनी चुनावी मशीनरी के जरिये स्थिति का लाभ उठाना चाहा और सितम्बर – अक्तुबर 1999 के चुनावों में विजय के सपने संजोने लगी।»[28] देश के धूर्त राजनेताओं ने कश्मीर विवाद को भी प्रचार का साधन बनाकर हिंदू-मुस्लिमों को आपस में भडकाकर कुर्सी पाने के स्वार्थ को पूरा करना चाहा जो लोकतंत्र के सिद्धांतों की हार थी। कश्मीर के पेचिदा बने इस विवाद के कारण अनेक निरापराध नागरिक, पुलिसकर्मी, जवानों ने अपने प्राण गवायें। कश्मीर में 'सांप्रदायिकता' से निर्मित तनाव भरे माहौल ने धरती के जन्नत को समशान के मातम में बदल डाला।

1.5.4 आरक्षण नीति और 'सांप्रदायिकता' :–

20 वीं सदी के अंतिम दशक में सांप्रदायिक उन्माद के ही एक अंग स्पृश्यास्पृश्य भाव के कारण भारतीय सामाजिक परिवेश उग्र बना। पिछडी जातियों के

विकास धारा में लाने हेतु दिया गया 'आरक्षण' सांप्रदायिक उग्रता का कारण बना। प्राचीन काल से भारतीय समाज पर वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रभाव देखा जा सकता है। स्पृश्य-अस्पृश्य स्तरों पर समाज का विभाजन और उनमें भी भिन्न जातियों में समाज विभाजित था। अनेक पुराण कथाओं और ग्रंथों से स्पष्ट होता है कि समाज के उच्चवर्णीय लोगों ने निम्न जाति पर अनेक प्रकार के अत्याचार किये। 'मनुस्मृति' को प्रमाण मानकर शूद्रों को शिक्षा तथा अनेक अधिकारों से वंचित रखा गया। इस ब्राह्मणवादी वृत्ति के इतिहास को स्पष्ट करते हुए सेवा निवृत्त न्यायमूर्ति श्री. चंद्रशेखर धर्माधिकारी जी लिखते हैं –"भारत का इतिहास संपन्नता का रहा है। कहते हैं कि इस देश में दही–दूध की नदियाँ बहती थी। दही–दूध की नदियाँ पौराणिक काल में भी कुछ लोगों के लिए बहती थी। आज भी वह कुछ लोगों के लिए बहती है। लेकिन उन्होंने दही-दूध दूसरों को चखने की बात छोडिए, उस नदी के किनारे भी खडे नहीं होने दिया।"[29] जिससे अनादी काल से स्पृश्य-अस्पृश्यों में विषमता बनी रही और फलस्वरुप शूद्र पीछे रहे और उनकी दुर्गति हो गई।

देश के विकास की मुख्यधारा में पिछडी जातियों को लाने का आरक्षण ही एक कारगर उपाय था। पिछडी जातियों को आरक्षण देने का ऐतिहासिक कार्य समतावादी कोल्हापुर रियासत के लोकराजा राजर्षि शाहू छत्रपती ने किया। उन्होंने 26 जुलाई, 1902 में पिछडे वर्गों को सरकारी नौकरियों में पचास प्रतिशत आरक्षण दिया जिसका सवर्णों ने कडा विरोध किया था। 'आरक्षण-नीति' के कारण सवर्णों के एकाधिकारशाही को खतरा था। इसी कारण स्पृश्य-अस्पृश्यों के बीच तनाव बनता रहा। सनातनियों के दमनकारी वृत्ति से तंग आकर 14 अक्तुबर, 1956 में डॉ. बाबासाहेब आम्बेडकर ने अपने पाँच लाख अनुयायियों के साथ 'बौद्ध धर्म' का स्वीकार किया जिससे हिंदू धर्म को धक्का पहुँचा और लोगों के मन में अस्पृश्यों के खिलाफ दुश्मनी ने घर बना लिया।

भारत सरकार ने सन् 1998 में 'मंडल आयोग' का गठन करके पिछडी जातियों को सरकारी दफ्तरों में नौकरी के लिए आरक्षण का प्रावधान घोषित किया जिसके फलस्वरूप यादव, कुर्मी, लोधों, चमारों को आगे आने का सुनहरा मौका मिलनेवाला था लेकिन सवर्णों की दमनकारी वृत्ति ने इस आरक्षण नीति का कडा विरोध किया। देश के मुंबई, अहमदाबाद जैसे महानगरों में दलितों के विरोध में सांप्रदायिक रंग उग्र बना जिसमें दलितों के घरों को जलाया गया। इस अग्निकांड में अनेक

निरपराधी लोग मारे गये। अतः स्पष्ट है कि अंतिम दशक में 'आरक्षण नीति' के कारण दलित-सवर्णों में वैमनस्य बढा और सांप्रदायिक परिवेश आतंकमय बना।

* निष्कर्ष :-

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट होता है कि 20 वीं सदी के अंतिम दशक के सांप्रदायिक परिवेश में 'बाबरी कांड' के कारण सांप्रदायिकता के चरम विकास एवं उत्कर्ष ने हिंदू-मुस्लिमों के बीच उग्र सांप्रदायिक दंगें छिड गए जिसमें अनेक मासुम लोगों को अपने प्राण गँवाने पडे। 'बाबरी कांड'ने भारत जैसे विशाल लोकतांत्रिक देश के सामने अनेक सवाल खडे किए। इन्सान का दानवी रूप इन्सानियत के सामने बडे खतरे के रूप उभरकर आया। इस विघटनवादी घटना के पीट पीछे मुंबई बम-विस्फोट की शृंखला ने सांप्रदायिक भीषणता को बढाया जिससे मनुष्य के विकृत मानसिक और वैचारिक रूप के दर्शन हुए। कश्मीर-सीमा विवाद का प्रश्न इतना पेचीदा बना जिससे भारत-पाक दरम्यान तनावपूर्ण स्थिति बढती गई। फलस्वरूप 'कारगिल वॉर' छीड गया। इस काल के सांप्रदायिक परिवेश में धर्म की राजनीति के घिनौनी रूप के पुनः दर्शन हुए। स्वार्थ लोलुप राजनेताओं ने मजहबों के नाम पर देश की आवाम को भडकाकर कुर्सी पाने का स्वार्थ पूरा किया। 'आरक्षण नीति' से रुष्ट सवर्णों ने अस्पृश्यों के विरोध में उग्र प्रदर्शन करके जातिगत सांप्रदायिकता को बढावा दिया।

* समन्वित निष्कर्ष :-

प्रस्तुत विवेचन से स्पष्ट होता है कि 'सांप्रदायिकता' हमारे इतिहास और वर्तमान जीवन की त्रासदी है। 'सांप्रदायिकता' धर्म और धर्म के विविध संप्रदायों से संबंधित ऐसी संकल्पना है, जो मनुष्य के स्वधर्म कट्टरता और परधर्म संकुचित वृत्ति के कारण उत्पन्न होती है। अपने धर्म के प्रचार हेतु दूसरे धर्मों के प्रति द्वेषभाव 'सांप्रदायिकता' को जन्म देता है।

'सांप्रदायिकता' धर्म का नकाब ओढकर हिंसा का तांडव मचा देती है। 'धर्म' का स्त्रोत के रूप में इस्तेमाल करके घिनौनी राजनीति के हथकंडें अपनाने के कारण 'सांप्रदायिकता' के उत्पीड़न को बढावा दिया जा रहा है। इसके मूल में धार्मिक कट्टरता, परधर्मद्वेष और स्पृश्यास्पृश्य भाव है। भारत धर्म निरपेक्ष देश होने के बावजूद यहाँ धार्मिक विसंवाद से 'सांप्रदायिकता' का उन्मादी माहौल हमेशा बना रहा

है। भारत में अन्य धर्मों की तुलना में हिंदू–मुस्लिम धार्मिक विसंवाद भीषण और पुराना है।

भारत के 'सांप्रदायिक' परिवेश को देखने से स्पष्ट होता है कि स्वतंत्रतापूर्व काल में अँग्रेजों ने सन् 1857 की बगावत में हिंदू-मुस्लिमों की साझी विरासत को पहचान कर अपने साम्राज्य विस्तार के लिए प्रयत्नपूर्वक दोनों को मजहबों के नाम पर बाँटने का कार्य किया। भारतीय राजनीति में 'धर्मयुद्ध' के कारण अँग्रेजों ने 'विखंडित करो और राज्य करो' की नीति से भारत-पाक विभाजन को अंजाम देकर भाई-भाईयों में पुनः 'कुरूक्षेत्र' का निर्माण करके इतिहास को दोहराया। स्वतंत्रता की वेदीपर अपने भाईयों का खून बहाकर लोगों ने दानवी वृत्ति के दर्शन कराए जो सामाजिक स्वास्थ्य के लिए खतरा है।

स्वातंत्र्योत्तर काल में 'सांप्रदायिकता' की भीषणता से महात्मा गांधी जैसे विश्ववंद्य युगपुरूष की हत्या भारतीय इतिहास की शोकांतिका है। स्वातंत्र्योत्तर काल में वांशिक और जातिगत भेदभाव ने भारत का सांप्रदायिक माहौल उग्र बना जिसमें तत्कालीन प्रधानमंत्री इंदिरा और तत्पश्चात राजीव गांधी की हत्या भारतीय राजनीति की शोकांतिका एवं हानि है। स्वातंत्र्योत्तर काल में 'बाबरी मस्जिद विवाद' से सांप्रदायिकता को दुगनी ऊर्जा प्राप्त हुई। साथ ही कश्मीर–सीमा विवाद ने भारत-पाक के बीच तनावपूर्ण माहौल बनता रहा जिससे भारतीय मुस्लिमों को देशभक्ति और वफादारी के सबूत देने पड रहे थे।

अंतिम दशक में बाबरी कांड ने सांप्रदायिकता को चरम उत्कर्ष पर पहुँचाया। बाबरी मस्जिद के ध्वस्त करने से प्रतिशोध की भावना बलवति हुई और उसके प्रत्युत्तर के रूप में मुंबई को बम धमाकों से अपार क्षति पहुँचायी गई। इतिहास गवाह है कि भारत सांप्रदायिकता के जख्म को सहते आया है जिसने लाखों निरपराध लोगों के आशियाने को जलाकर राख कर दिया, करोडों को अपने प्राण गँवाने पडे हैं। वर्तमान समय में 26 नवम्बर 2008 का मुंबई पर हुआ आतंकवादी हमला इसी सांप्रदायिकता की गवाही देता है। देश के नगरों,महानगरों पर बार-बार हुए आतंकवादी हमलें सांप्रदायिक जहर का परिपाक ही माने जाते हैं। आज का सांप्रदायिक माहौल युद्ध की कगार पर खडा दिखाई देता है।

संदर्भ–ग्रंथ सूची

1. सम्पा.श्री. नवलजी,'नालंदा विशाल शब्द सागर', पृ. क्र. 1380
2. वही , पृ. क्र. 1380
3. वही , पृ. क्र. 1428
4. वही , पृ. क्र. 1428
5. (डॉ.) लाजवंती भटनागर – 'धर्म संप्रदाय और मीरा का भक्तिभाव',पृ.क्र. 16
6. सम्पा. सुभाष वारे , 'राष्ट्र सेवा दल'(मासिक), पृ. क्र. 54
7. वही , पृ. क्र. 18
8. यदुनाथ थत्ते – 'सेवादल के बुनयादी सिध्दांत', पृ. क्र. 10
9. सम्पा. कुसुम चतुर्वेदी – 'नया मानदंड' (त्रैमासिक), पृ. क्र. 71
10. मूल–(डॉ.) लोहिया , (प्रॉस्टिटयूटिंग रिलीजन फॉर पॉलिटिक्स) अनुवाद– यदुनाथ थत्ते – 'सेवादल के बुनयादी सिध्दांत', पृ. क्र.11–12
11. मूल–(डॉ.) आम्बेडकर ,अनुवाद– यदुनाथ थत्ते – 'सेवादल के बुनयादी सिध्दांत', पृ. क्र 15
12. सम्पा. सुभाष वारे , 'राष्ट्र सेवा दल'(मासिक), पृ. क्र. 15
13. वही , पृ. क्र. 29
14. मधु वाणी –'संघ परिवाराचे इतिहासाचे पुनर्लेखन आणि शिक्षणाचे सांप्रदायिकीकरण', पृ. क्र. 34
15. सम्पा. प्रकाश बाळ और किशोर बेडकिहाळ–'धर्म आणि राजकारणः विपर्यास आणि वस्तुस्थिती', पृ. क्र.12
16. प्रा. चंद्रकांत पाटगांवकर – 'समता के सेनानी' , पृ. क्र. 20
17. (डॉ.) पिताम्बर सरोदे – 'आधुनिक हिंदी उपन्यासों में राजनीतिक एवं आर्थिक चेतना', पृ. क्र. 80
18. (डॉ.) हमेंद्रकुमार पानेरी – ' स्वातंत्र्योत्तर हिंदी उपन्यासः मूल्य संकमण', पृ. क्र.259–60
19. प्रदीप देशपांडे – फाळणीच्या अंतरंगात, पृ. क्र. 32
20. सम्पा., 'लोकमत समाचार पत्र',(रविवार,23–03–2007), पृ. क्र. 4
21. (डॉ.) क्षितिज धुमाळ – 'बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन', पृ. क्र.17

22. विराज – 'राष्ट्रीयता (हिंदुत्व) की हुंकारः ग्यारहवीं लोकसभा, पृ. क्र.11–12
23. (डॉ.) क्षितिज धुमाळ – 'बीसवीं सदी के अंतिम दशक के उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक अध्ययन', पृ. क्र. 17
24. (डॉ.) यादवराव धुमाळ, – 'साठोत्तरी हिंदी-मराठी के सामाजिक उपन्यासों का प्रवृत्तिमूलक तुलनात्मक अध्ययन, पृ. क्र.103
25. विराज – 'राष्ट्रीयता (हिंदुत्व) की हुंकारः ग्यारहवीं लोकसभा, पृ. क्र.15
26. (डॉ.) सराय – 'वक्त का तकाजाः धर्म निरपेक्ष जनतांत्रिक ताकतों की एकता', पृ. क्र.4
27. सम्पा. प्रसाद कुलकर्णी, 'फॅसिझमच्या दिशेने भाजपाची वाटचाल', पृ. क्र.36
28. (डॉ.) सराय – 'वक्त का तकाजाः धर्म निरपेक्ष जनतांत्रिक ताकतों की एकता', पृ. क्र.5
29. चंद्रशेखर धर्माधिकारी , 'समता के सेनानी' , प्रस्तावना से उद्धृत

❋ ❋ ❋